सामयिक प्रकाशन

समाज और इतिहास

नवीन शृंखला

12

दर्शन की शिक्षा और उसकी प्रयोजनशीलता

रबिन्द्र रे

सेवानिवृत्त असोशिएट प्रोफेसर

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

नेहरु स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय

2014

सामयिक प्रकाशन, नेहरु स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय

नेहरु स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय

© रबिन्द्र रे, 2014
सर्वाधिकार सुरक्षित। लेखक की लिखित अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भी अंश का दोबारा प्रयोग, पुनरोत्पादन किसी भी रुप में नहीं किया जा सकता। इसमें व्यक्त विचार, अर्थनिर्धारण तथा निष्कर्ष पूर्णतः लेखक के हैं और किसी भी तरह, पूर्णरूपेण अथवा अंशतः, नेहरु स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय के विचारों को नहीं दर्शाते।

प्रकाशक

नेहरु स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय
तीन मूर्ति भवन
नई दिल्ली–110011
ई.मेल : ddnehrumemorial@gmail.com

आईएसबीएन : 978-93-83650-50-7

मूल्य रुपये 100/- ; यूएस $ 10

पृष्ठ सज्जा और मुद्रण : ए.डी. प्रिंट स्टूडिओ, 1749 बी/6, गोविन्द पुरी, एक्सटेंशन कालकाजी, नई दिल्ली–110019. ई.मेल : studio.adprint@gmail.com

सामयिक प्रकाशन, नेहरु स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय

दर्शन की शिक्षा और उसकी प्रयोजनशीलता*

रबिन्द्र रे

आज-कल की बोलचाल की भाषा में हिंदी शब्द 'दर्शन' और अंग्रेजी भाषा में 'फिलॉसफी' एक दूसरे के अनुवादित रुप माने जाते हैं। यूनिवर्सिटियों की विषय सूचियों में भी कुछ ऐसा ही प्रयोग प्रचलित है। साथ-साथ इस सामान्य से कुछ विशिष्ट प्रयोग में कुछ लोग फिलॉसफी को दर्शन के रुप में समझते हैं तो कुछ लोग दर्शन को फिलॉसफी के स्वरुप में समझते हैं। इससे भी विशिष्ट प्रयोग में भारतीय चिन्तकों की एक वरिष्ठ पीढ़ी ने भारतीय दर्शन को फिलॉसफी के रुप में प्रस्तुत किया है, जबकि ज्यादातर पश्चिम के फिलॉसफी के अनुयायी दर्शन को फिलॉसफी मानते ही नहीं और दावा करते हैं कि मात्र पश्चिम में ही फिलॉसफी पाई जाती है। सामान्य और विशिष्ट प्रयोग की भिन्नता में शब्दों के अर्थ निर्धारण में परंपरा का सवाल प्रस्तुत होता है। 'दर्शन' शब्द भारतीय परंपरा के चिन्तन से जुड़ा है, जबकि 'फिलॉसफी' पश्चिम के चिंतन की परंपरा से जुड़ी है। जहां यह सच है कि दोनों संदर्भों में ये शब्द चिंतन के सत्य-संबोधन से जुड़े हैं, संदर्भों की भिन्नता में इन शब्दों के सत्य-आभास की भिन्नता है और तत्त्व विश्लेषण के प्रयोग में इनका एक दूसरे से परे ही रुख है। जहां कुछ प्रश्नों और कुछ संदर्भों में ये दोनों एक दूसरे के समान ही हैं (हालांकि वहां भी उनके तत्त्वावधान के ठोस रुप में भेद है), अन्य प्रश्नों और संदर्भों में और विशेष कर मूल दिशा में ये एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। जहां

* 31 मार्च 2014 को नेहरु स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली में दिए गए व्याख्यान का संशोधित संस्करण।

फिलॉसफी का ध्येय है मिथक का उन्मूलन, वहां दर्शन के मिथ्या और मिथ्याज्ञान के निवारण का लक्ष्य मिथक और उससे जुड़े प्रश्नों से कोई संबंध ही नहीं रखता। जहां मिथक और फिलॉसफी एक दूसरे को परिभाषित करते हैं और उनके द्वन्द्व में ही मिथ्या और सत्य परिभाषित होते हैं, वहां दर्शन की परंपरा में मिथक जैसी कोई अवधारणा ही नहीं। सच है, आजकल के हिंदी प्रयोग में पश्चिम के मिथक की परिकल्पना को आत्मसात कर लिया गया है, पर फिर भी इस हिंदी केन्द्रित चिंतन का कोई मूल मिथक-उन्मूलन दिशा नहीं है।

दर्शन एक प्रस्थान बिंदु है, न कि एक अंतिम समन्वयकारी ज्ञान बोध। दार्शनिक प्रयोग एक ऐसी प्रक्रिया है जो निरंतर दृष्टिकोण को सुधारता कर्म के मार्ग को आलोकित करता है। दर्शन और दृष्टिकोण ही वह बोध है, जो वृद्ध पीढ़ी शिक्षा के माध्यम से युवा पीढ़ी को प्रदान करती है, जो परंपरा का आधार है। दर्शन आध्यात्म और ज्ञान की सम्भावना का उद्घाटन करता है जो मनुष्य जीवन की सार्थकता को साकार रुप देती है। दर्शन में जहां फिलॉसफी जैसे प्रयोग पाए जाते हैं, वह इनको अपने-आप में समेटता, मनुष्य जीवन की कुंठा से निवृत्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। दर्शन का लक्ष्य है मनुष्य चिंतन की उस पद्धति को साकार करना जिसके जरिए मनुष्य अपने जीवन की सार्थकता को साकार करने में सफल हो सके। आध्यात्म दर्शन का अभिन्न अंग है जो उसके तत्वज्ञान का निर्धारण करता है। ज्ञान क्या है, इसको आलोकित करना दर्शन का ध्येय है। जहां यह परंपरा प्राचीनकाल से चली आ रही है, वहां वह आधुनिक अभिव्यक्तियों से रहित नहीं। आगे, हम आधुनिकता और आधुनिकतावादी पहलुओं का विस्तार करेंगे, यहां बस इतना कहूंगा कि आधुनिक भारतीय चिंतन का स्वरुप आज भी प्रधानतः दर्शन ही है। पश्चिम की फिलॉसफी का प्रारुप इस दर्शन से भिन्न है, हालांकि कई अर्थों में इन दोनों के प्रयास समान ही हैं। तत्व-बोध का सृजन करना ही दोनों की मूल दिशा है, जिसके आधार पर इन दोनों में मेल भी है और भिन्नता भी। परंपरा की मार्मिक गूढ़ता फिलॉसफी, दर्शन और दोनों परंपराओं की कला और उनकी पद्धतियों में पायी जाती है। जहां दोनों एक दूसरे से भिन्न हैं, उनका आपसी आदान-प्रदान प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। जहां दोनों की अपनी भिन्न विशिष्टताओं को नज़र-अंदाज कतई नहीं किया जा सकता

है, दोनों को एक-दूसरे के समक्ष रखना आज–कल की चुनौतियों में से एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है।

पश्चिम के आधुनिकतावादी सिद्धांतों और शैलियों और वहां के ईसाई विचारों का समकालीन भारतीय चिंतन पर गहरा और व्यापक असर पड़ा है। पाश्चात्य फिलॉसफी का मिथक-उन्मूलन स्वरुप और उसके ईसाई धर्म के अंध-विश्वास निवारण के मिशन ने आधुनिक भारतीय विचारधाराओं को अपने अनुकूल मोड़ देने की कोशिश की है। यहां तक कि भारतीय आधुनिकता के निरे बोध में ही पाश्चात्य आधुनिकता और आधुनिकीकरण का अपरिहार्य योगदान है। क्रमशः पश्चिम के आधुनिक मिथक भारतीय चिंतन की मूल धारा में आत्मसात कर लिए गए हैं और किए जा रहे हैं। पश्चिम की संस्कृति और जीवन यापन तथा प्रेरणात्मक कलाओं का भारतीयकरण और भारत का पाश्चात्यीकरण कमोबेश समस्त देश में जारी है। अंग्रेजी भाषा और कानून कायदे भारत के अभिन्न अंग से बन गए हैं। चर्चा और वाद-विवाद, चाहे वे वैयक्तिक हो या सामूहिक, पश्चिम के सभ्यता-मूलक विचारों के अनुकूल ही किए जाते हैं। समाज और संस्थाओं, यहां तक कि संस्कारों के स्वरुप का पाश्चात्यीकरण का सिलसिला जारी है। अतिशयोक्ति नहीं होगी यदि हम कहें कि हिंदू, मुसलमान, बौद्ध, सिख, ईसाई चिंतन से पृथक एक विशिष्ट भारतीय चिंतन यदि है तब वह यह पाश्चात्यीकृत भारतीय विचारधारा ही है।

पश्चिम के आधुनिकतावादी सिद्धांतों में सर्वप्रथम इस आधुनिकता या मॉडर्निटी का ही सिद्धांत है। पश्चिम की मॉडर्निटी एक काल-बोध या युग-बोध है जिसका सीधा ताल्लुक लिखित इतिहास और उसके लेखन से है। इससे जुड़ी यह परिकल्पना भी है कि पश्चिमी देश के लोग अपने आप को अक्सर ऐसी एकमात्र सभ्यता समझते है जिसकी अपनी विशिष्ट भविष्य या डैस्टिनी (Destiny) है। परंपरागत भारतीय चिंतन में व्यक्ति विशेष का विशिष्ट भविष्य या डैस्टिनी होती है, पर सामूहिक काल-चक्र की लीला के अलावा भारत-भूमि या मानव जाति का कोई विशिष्ट भविष्य या डैस्टिनी नहीं। सच है, यहूदी-इस्लाम-ईसाई धर्म-समूह में यह विशिष्ट भविष्य या डैस्टिनी की परिकल्पना पाई जाती है, पर उस प्रकार लिखित इतिहास और उसके लेखन से संबद्ध नहीं जिस

प्रकार पश्चिम के आधुनिकतावाद का सिद्धांत और उसके विशिष्ट भविष्य या डैस्टिनी का प्रश्न।

पश्चिम के लिखित इतिहास का प्रारम्भ उनके अपने इतिहास के पाठन में हैरॉडोटस से होता है जो प्राचीन यूनान के इतिहासकार थे। होमर, उनसे प्राचीन, प्राचीन यूनान के सभ्यता-मूलक महाकाव्यों 'इलियैड' और 'ऑडिसे' के सब से वरिष्ठ गायक इतिहासकार नहीं माने जाते हैं, हालांकि पुरातत्ववेताई प्रयोगों में उन में वर्णित स्थानों और घटनाओं की पुष्टि हुई है। यह इसलिए कि इन महाकाव्यों में तथाकथित मिथक का पुट है, पारलौकिक जीवों और घटनाओं का जिक्र जिनसे पश्चिम के विद्वानों की सहमति मुश्किल है। पाश्चात्य अवधारणाओं के अनुसार उनके सभ्यता-मूलक इतिहास चिंतन का आरम्भ इसी प्राचीन यूनान से होता है। इतिहास के लेखन में उस समय जो काल-बोध था वह कोई विशिष्ट युग-बोध नहीं, पर मात्र काल के क्रम का अनावरण था। पश्चिम में ईसाई धर्म के पदार्पण ने काल-बोध और युग-बोध को जागृत किया था। अब काल दो भागों में बांटा जाने लगा-एक ईसा-पूर्व अंधविश्वासी पेगन (Pagan) और दूसरा ईसा जन्म पश्चात जीवन मुक्त ईसाईयत (Christendom)। पश्चिम के इतिहास और उसके लेखन में दो भिन्न युगों की चर्चा की जाने लगी। यह परिकल्पना आजकल के कैलेण्डरों की गणना में आज तक पाई जाती है। आधुनिकता या मॉडर्निटी के पदार्पण के साथ काल तीन भागों में विभाजित किया जाने लगा। आधुनिकतावाद एक करीब मध्यकालीन अंधविश्वासी युग को नकारता, एक प्राचीन क्लासिकल युग को आत्मसात करने का प्रयास था। इतिहासकार इतिहास को तीन भागों में बांटने लगे-समकालीन मॉडर्न, मध्यकालीन ईसाई और प्राचीन यूनानी और रोमन (Roman) सभ्यता। इस लिखित इतिहास के पहले के काल को इतिहास-पूर्व माना जाने लगा। आजकल के पाश्चात्य लेखन में पोस्ट मॉडर्न या उत्तरआधुनिक काल का जिक्र किया जाने लगा है, जिसमें समकालीन और मॉडर्न या आधुनिक में भेद किया जाता है। पोस्ट-मॉडर्निटी या उत्तरआधुनिकता के दावे में मॉडर्निटी या आधुनिकता के वैचारिक आधुनिकीकरण के मिशन से अलग हटके, उसके पूर्वाग्रह-संबंधी विचारों का खंडन करते हुए, मेटा-थियोरि (Meta-theory) या व्यापक सर्व-संबंधी सिद्धांतों के त्याग का प्रयास किया जाता है।

पर पोस्ट-मॉडर्न या उत्तरआधुनिक दर्जे में दो विभिन्न प्रकार के प्रतिपादक शामिल हैं। एक तो वे हैं जो मॉडर्निटी से अलग हट के भी उसी की निर्धारित दिशा में बढ़ना चाहते हैं, तो दूसरे वे हैं जिनको आधुनिकता या मॉडर्निटी से तकलीफ है, और किसी अन्य दिशा में ही जाना चाहते हैं।

हालांकि भारत के आधुनिकतावाद का सिद्धांत पश्चिम के मॉडर्निटी के सिद्धांत से प्रेरित है, भारत में आधुनिकतावाद का पदार्पण इस प्रेरणा और उससे जुड़े विचार तक सीमित नहीं। पश्चिम के मॉडर्निटी का सिद्धांत काल परिवर्तन का एक ऐसा बोध है कि दावा किया जाता है कि सब कुछ बदल गया और सब कुछ की नये सिरे से पुनर्सृजन और पुनर्गठन की संभावना है जिसके जरिए हम अपना स्वर्णिम भविष्य बना सकते है। जहां पश्चिम की मॉडर्निटी या आधुनिकता एक मिलेनेरियन (Millenarian) बोध है, भारतीय अवधारणा, चाहे हम आम जनता या विशेषज्ञों की राय लें, आंशिक और धीरे-धीरे प्रतिफलित होने वाली है। भारत में तीन सिलसिले जारी हैं जो आपस में संबद्ध भी हैं, और एक दूसरे से भिन्न भी हैं-आधुनिकीकरण, पाश्चात्यीकरण और ईसाईकरण।

भारत के आधुनिकतावाद का देशी पक्ष भी है, और विदेशी भी। देशी पक्ष का सबसे व्यापक और संस्कार-संबंधी पक्ष है हिंदू धर्म के कलियुग की अवधारणा। इस्लाम में कयामत की आसन्नता और ईसाई धर्म में डूम्ज़डे (Doomsday) की आसन्नता इस अवधारणा से मिलती जुलती हैं। कलियुग की अवधारणा के अंतर्गत विशेष रुप से काल-परिवर्तन का बोध हिंदू धर्म में बौद्ध धर्म के प्रादुर्भाव से आरम्भ होता है, जब सनातन धर्म का स्वरुप एक मिशन का रुख ले लेता है। आधुनिक भाषाओं का प्रादुर्भाव और उनमें भक्ति आंदोलनों की व्यापकता, आधुनिकीकरण को बल देती है। भारत में यूरोपीय पदार्पण दो पक्षों के आधुनिकीकरण का सृजन करता है। पहला, देशी पक्ष यूरोपीय अवधारणाओं से प्रेरित होकर हिंदू समाज सुधार का ध्येय अपनाता है, और अतीत के अध्ययन में मध्यकालीन कुरीतियों को नकारता हुआ एक प्राचीन स्वर्णिम वैदिक हिन्दुत्व के पुनः आधुनिक साक्षात्कार के मिशन का आविष्कार करता है। यहां याद रखने योग्य है कि सनातन धर्म का यह मूल्यांकन सर्वव्यापी नहीं और उसके प्रयोगों के विरोधियों की संख्या कोई कम नहीं। दूसरा, विदेशी

पक्ष, पाश्चात्य परस्ती के देशी साक्षात्कार का इच्छुक है। समकालीन संदर्भ में, स्वराज के अंतर्गत राजनीति दो खेमों में बंटी है। एक स्वदेशी दिशा अपनाना चाहती है और दूसरी पश्चिम की दिशा में बढ़ना चाहती है। याद रहे दोनों समाज सुधारक हैं जो तथाकथित कुरीतियों का अंत करना चाहते हैं।

इस्लाम के आधुनिकीकरण के तीन पक्ष हैं। पहला, जिहादी है, जो विश्व के पूर्णतः इस्लामीकरण का इच्छुक है। दूसरा, इस्लाम के नवीनीकरण का इच्छुक है जो आधुनिकता के अनुकूल एक मजहबी शिक्षा प्रणाली का प्रतिपादन करता है जिसका स्वरुप मदरसों में प्रतिफलित होता है। तीसरा, पश्चिम के ज्ञान-विज्ञान से प्रभावित, देशी धर्म और पश्चिम के विज्ञान का पक्षपोषण करता है। यह तीसरा हिंदूओं की मूल धारा से मेल रखता है, जोकि स्वतंत्र भारत की शिक्षा प्रणाली का भी ध्येय है। परंतु स्वतंत्र भारत का फॉर्मूला होते हुए भी सरकारी शिक्षा प्रणाली में, देशी धर्म का कोई स्थान ही नहीं। धार्मिक प्रचार-प्रसार सरकारी संस्थाओं से अलग, विशिष्ट धार्मिक संस्थाओं में और समाज में आम प्रचार-प्रसार के जरिए होता है। समन्वयकारी संस्थाओं का नामोनिशान ही नहीं।

पश्चिम के आधुनिक ज्ञान-विज्ञान, विशेषकर उसकी व्यवहारिक तकनीकी महारत, भारत के लिए उसके आधुनिकतावाद का अतिआवश्यक अंग है जो भारतीय अपनाने के इच्छुक हैं। खास करके, पश्चिम के विज्ञान का दबदबा है ही, इसके अलावा भारतीय वैज्ञानिक दृष्टिकोण के इच्छुक हैं। भारत में, जैसे पश्चिम में भी, वैज्ञानिक दृष्टिकोण एक विशिष्ट सोचने का तरीका समझा जाता है, जिसका अध्ययन फिलॉसफी के अंतर्गत फिलॉसफी ऑफ साईंस में किया जाता है। पर इस वैज्ञानिक दृष्टिकोण के बारे में ठोस रुप से दो ही विशिष्ट वाक्य संभव हैं। पहला है, विज्ञान के शोध का अनीश्वरवादी सिद्धांत। वह यह कि पाश्चात्य फिलॉसफी के मिथक-उन्मूलन स्वरुप के अनुकूल वैज्ञानिक तर्क और शोध में ईश्वर या पारलौकिक तथ्य वर्जित हैं। इनका अलग से अध्ययन और इन पर शोध सम्भव है, पर वैज्ञानिक व्याख्यान में ये व्याख्यात्मक कारण के रुप में प्रस्तुत नहीं किए जा सकते हैं। दूसरा है फैक्ट (Fact) यानि तथ्य और वैल्यू (Value) यानि मूल्यांकन का निरंतर भेद और शोध का तथ्यों पर आधारित रुख। मूल्यों का भी वैज्ञानिक शोध संभव है, पर

वह मूल्याकंनों से परे, निरे तथ्य पर ही आधारित होना चाहिए। तथ्यों के मूल्यांकनों से संबंध पर फिलॉसफी ऑफ साईंस में विस्तृत टिप्पणियां और बहस हैं, पर इन में इनके भेद का सर्वदा ध्यान रखा जाता है। इन दो वाक्यों के अलावा पश्चिम के आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण के बारे में व्यापक और निर्विवाद रुप से और कुछ कहना बहुत ही मुश्किल है।

आधुनिक पश्चिम का भारत पर प्रभाव साईंस-परस्ती तक सीमित नहीं, पर उसकी संपूर्ण संस्कृति और कला पद्धतियों पर आधारित है, जिनसे साईंस की उत्पत्ति और विकास हुआ है। पश्चिम के आधुनिकतावादी उसूलों में से सबसे महत्वपूर्ण फ्रीडम (Freedom) यानि आजादी है। फ्रीडम एक अंदरुनी आभास है जिसका दायरा सामाजिक और राजनीतिक है। वह एक शक्तिशाली और विस्फोटक आकांक्षा है, जिसके अनुकूल ही, और जिसको साकार करने के प्रयासों में समकालीन पाश्चात्य संस्कृति और कलाओं का साक्षात्कार होता है। मुक्ति की यह परिकल्पना, वास्तविकता की एक वस्तु-निष्ठ परिभाषा पर आधारित है, जब कि उसका तत्त्व-बोध या मेटाफिज़िक्स (Metaphysics) इस वस्तु-निष्ठता तक सीमित नहीं। मानविक संभावनाओ का आधार उसकी फ्री विल (Free will) में पाया जाता है, जो मनुष्य जीवन का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है। कर्त्तापन का यह अंतः-करणात्मक विशेषण, स्थूल को अपने अनुकूल गढ़ने का प्रयास करता है और सक्रिय और निष्क्रिय के द्वंद्व में ही समस्त ब्रह्मांड का स्वरुप निर्धारित होता है। पश्चिम का यह विचार-गठन प्रायः विश्व व्यापी हो चुका है और समकालीन सभ्यता विश्व के पाश्चात्यीकरण पर आध ाारित है। पश्चिम के सांसारिक मुक्ति के लक्ष्य का भारतीय स्थानान्तरण भारत के राजनीतिक प्रयासों का केन्द्र-बिन्दु सा बन गया है। अक्सर समता के प्रयासों को भी मुक्ति के साक्षात्कार से जोड़ा जाता है, पर समता और आजादी एक नहीं होते-यहां तक कि उनमें अक्सर ही द्वंद्व होता है। आधुनिक पाश्चात्य विचारधाराओं का भारत में स्थानांतरण भारतीय दर्शन की आधुनिक चुनौतियों का सृजन करता है।

पश्चिम के आधुनिकतावादी दावे का शायद सबसे महत्वपूर्ण रुख प्रगति या विकास का है। निरंतर प्रगति में आस्था व्यापक और विस्तृत है, पर यह सर्वमान्य नहीं। जहां एक तरफ बहुतायत आशावादी और ऑप्टिमिस्ट

(Optimist) हैं, वहां दूसरी ओर श्रेष्ठ और अल्प संख्यक विचार निराशावादी और पैसिमिस्ट (Pessimist) हैं। हर दिन, हर अर्थ में हमारी स्थिति में निरंतर सुधार हो रहा है – जहां यह दृष्टिकोण बहुमत का श्रेय है, श्रेष्ठ अल्प संख्यक विचार का मानना है कि सुधार से कहीं दूर, हमारी स्थिति या तो तटस्थ है या दिन पर दिन बिगड़ती जा रही है। जहां आशावादी मानते हैं कि मनुष्य जाति उत्थान के पथ पर अग्रसर है, निराशावादी मानते हैं कि न केवल मनुष्य को सुधारना असम्भव है, पर यह भी है कि विश्व पतनोन्मुख है। पाश्चात्य आधुनिकीकरण के पक्षपोषकों के श्रेष्ठ विचारकों की राय मिली-जुली है। जहां वे आधुनिकीकरण की मूल दिशा का समर्थन करते हैं और उसे अवश्यम्भावी मानते हैं, वे उस में मौलिक और अपरिहार्य रुप से खोट, खामियां और हानि भी पाते हैं जिन से छुटकारा या जिनका निवारण उनके प्रयासों का ध्येय हुआ करता है।

भारत में दर्शन की शिक्षा के दो स्रोत हैं। एक तो यूनिवर्सिटियों के फिलॉसफी डिपार्टमेंटों में पायी जाती है, जहां मूल रुप से पाश्चात्य फिलॉसफी का ही अध्ययन हुआ करता है। इस फिलॉसफी का अध्ययन कमोबेश सभी आर्ट्स और सोशल साईंस के विभागों में यथा-प्रयोजन किया जाता है। सभी आर्ट्स और सोशल साईंस के कोर्स पाश्चात्यीकृत हैं, चाहे उनकी शिक्षा अंग्रेजी या हिंदी या अन्य किसी भाषा या कई एक भाषाओं की खिचड़ी में ही क्यों न की जाती हो। यहां पाश्चात्य परंपरा के अध्ययन को पाश्चात्य दृष्टिकोण के रुप में नहीं किया जाता है, पर उसे एक मानव-व्यापी विज्ञान समझ कर किया जाता है। मेरा अर्थ यह नहीं है कि उनमें भारतीय लेखकों का स्थान नहीं, पर इन विषयों का सम्पूर्ण स्वरुप और चिंतन प्रणाली पश्चिम के संपूर्ण मानव-व्यापी विज्ञान के दावे को बल देता है। यदि भारतीय परंपरा का कोई स्थान है तो वह मात्र एक ऐतिहासिक महत्व रखता है। सच है, फिलॉसफी के कोर्सो में भारतीय दृष्टिकोण भी पढ़ाए जाते हैं, पर वे मात्र एक विशिष्ट दृष्टिकोण के रुप में पढ़ाए जाते हैं। संपूर्ण बौद्धिक और सांस्कृतिक विचार शैली का पाश्चात्यीकरण हुआ है, और यूनिवर्सिटियों और शिक्षा संस्थानों में पश्चिम के भारतीयकरण का सिलसिला ही जारी है।

अपने-आप में यह आश्चर्यजनक नहीं, क्योंकि गणतंत्र की संपूर्ण

अवधारणा ही और उसकी मूल दिशा ही भारत के पाश्चात्यीकरण की पक्षपाती है। क्योंकि यह पाश्चात्यीकरण भारत की अपनी परंपराओं से अलग रहकर नहीं हो सकता, गणतंत्र के मूलतः पश्चिमी रुख का भारतीयकरण हुआ है, और यह परिस्थिति भारत तक सीमित नहीं पर प्रायः संपूर्ण विश्व का ऐसा पाश्चात्यीकरण हुआ है, जिसमें पश्चिम सार्वभौमिक माप-दण्ड है, और अन्य देश और इलाके उसके विशिष्ट परिवर्तित स्वरुप।

आश्चर्यजनक तो शायद यह भी नहीं कि पाश्चात्यीकरण होते हुए भी एक विशिष्ट भारतीय विचारधारा का सृजन हुआ है। यह भारतीय विचारधारा किसी एक ही आवाज या किसी एक ही भाषा में नहीं बोलती। विविध विचारों का एक कोलाहल सा मचा हुआ है, जिसमें विविधता होते हुए भी एक भारतीयता सी पहचानी जा सकती है। आधुनिक भारत की विचार शैलियों का यह समूह फिलॉसफी या दर्शन की भाषा में भले ही न बोलता हो, उसके फिलोसॉफिकल और दार्शनिक मूल तो हैं ही, उसका स्वरुप दर्शन के अनुकूल ही है, न कि पश्चिम की फिलॉसफी के। फिलॉसफी और दर्शन के यूनिवर्सिटी के कोर्सों में ये विचार या ये विचारधाराएं भले ही नहीं पढ़ाई जाती हों, इन कोर्सों में जो भी पढ़ाई जाती हैं उसको आलोकित करने का ढर्रा इन्हीं विचारों और विचारधाराओं की शब्दावली और पूर्वाग्रहों से जुड़ी हुई होती है। ये भारतीय विचार और विचारधाराएं समस्त भारत के बोलचाल के जीवंत दार्शनिक आधार हुआ करते हैं।

यूनिवर्सिटियों से अलग, आम समाज में और धार्मिक संस्थानों में भी दर्शन की शिक्षा प्रदान की जाती है। बोलचाल की भाषा और भारतीय व्यवहार प्रणाली के परंपरागत पक्षों से ज्यादा मेल रखते हुए, इस शिक्षा का ध्येय हुआ करता है, यथासम्भव परिवर्तित परिस्थिति में परंपरागत विचार और विचार शैली को बनाए रखना। परंपरा का पक्षधर होने के नाते, ये आधुनिक जीवन से जरा हट कर ही चलते हैं, और आधुनिक विचारों और विचारधाराओं से जैसे इनका कोई संबंध ही नहीं। सच है, ये आधुनिक जीवन की समस्याओं से निपटने की कला प्रदान करने का दावा करतीं हैं, और अपने आप को विज्ञान और साईंस के रुप में प्रस्तुत करती हैं, पर साईंस के विचारों और विचार शैली या आधुनिकीकरण से संबंधित समस्त विचारधाराओं से उनका इतना ही

संबंध हुआ करता है कि जहां तक ऐसे विचारों से उनकी अपनी अवधारणाओं की पुष्टि हो। आधुनिकीकरण के विचारों की चुनौतियों से निपटने या इनको कोई महत्व देने का नामोनिशान तक नहीं।

यूनिवर्सिटियों की शिक्षा प्रणाली में भी, एक अल्पसंख्यक परंतु अति महत्त्वपूर्ण धारा भारतीय दर्शन को प्राथमिकता देने के पक्ष में है। इसके सबसे प्रभावशाली अनुयाईओं का लक्ष्य स्वराज हुआ करता है, जबकि स्वराज को वे पाश्चात्य परस्ती और पश्चिम के प्रभाव से मुक्ति के रुप में परिभाषित करते हैं। वे गणतंत्र को सही अर्थों में स्वतंत्र नहीं मानते और भारत के समकालीन गुलामी का स्रोत पश्चिम की नकल की मानसिकता में देखते है। ये परंपरा को यथा संभव पश्चिम के प्रभाव से मुक्त करना चाहते हैं, हालांकि पाश्चात्य शैली में ही। सच है, इन्होंने आधुनिकीकरण के विचारों और विचारधाराओं की चुनौतियों से निपटने की प्रक्रिया आरंभ कर दी है, पर उस तरह बोलचाल की भाषा और दैनन्दिनी व्यवहार में जुड़े हुए नहीं, जैसे कि परंपरा के धार्मिक प्रचारक।

भारत का पाश्चात्यीकृत सामाजिक और राजनीतिक चिंतन विकासवाद और मानववाद के दायरों में ही घूमता है। इसकी शैली एक अनीश्वरवादी इतिहास की अवधारणा से प्रेरित है, जहां इस अनीश्वरवाद का स्वरुप अवश्यम्भावी रुप से नास्तिक नहीं। सिर्फ नास्तिक ही नहीं, इस इतिहास में धर्म और अध्यात्म को भी अनिवार्य रुप से नकारा नहीं जाता है। मानवतावाद और विकासवाद मानवीय जीवन के भौतिक प्रयासों की सार्थकता में विश्वास रखते हैं, और संपूर्ण मनुष्य जाति के ऐतिहासिक क्रम की एक तत्त्ववादी परिकल्पना पर आधारित हैं। इनसे जुड़ी और इन से परे कई विशिष्ट अवधारणाएं भी हैं जो या तो इनके ऑप्टिमिज़्म को बल देते हैं या इनके विपरीत निराशावाद और पैसिमिज़्म का पक्ष लेते हैं। पश्चिम की आधुनिकतावादी फिलॉसफी और उनका इतिहास इन विचारों के अभिन्न अंग हैं, जबकि इनकी शैली और संदर्भ भारतीय दर्शन के आधुनिकीकरण पर आधारित है।

पश्चिम का आधुनिक मानववाद उसके मध्यकालीन ईसाई अवधारणाओं पर आधारित है, जिन में मात्र मनुष्य जाति को फ्री विल (Free will) है, और समस्त वसुंधरा का सृजन, मात्र उसके भोग-उपयोग के लिए

किया गया है। भारत में हालांकि ऐसे लोग हैं जो इन विचारों को मानते हैं, मूल दिशा और हिंदू बहुमत इन से सहमत नहीं। यहां के मानववाद का स्वरुप यहां के परंपरागत धर्मों के मानवतावाद पर आधारित है, जिनमें मानव जाति का विशिष्ट स्थान तो है, पर यह प्रकृति के अन्य जीवों और वसुंधरा से परे नहीं। कहा जा सकता है कि यह बस एक कहने भर की बात है क्योंकि पश्चिम के अध्यात्म पर आधारित व्यवहार से भारतीय आधुनिक व्यवहार कोई भिन्न नहीं, पर जहां भारतीय पश्चिम के व्यवहार को अपना लिए हैं – विशेषकर के आधुनिक पश्चिम का मानवाकारी दम्भ-फिर भी विचारों में उनकी भिन्नता, भले ही गौण रुप से सही, व्यवहार पर कुछ-न-कुछ प्रभाव तो डालती ही है। पर, सच तो है कि भारतीय मानववाद एक विचारों की खिचड़ी है जिसकी सबसे महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति गणतंत्र का संविधान है।

कुछ इसी प्रकार, जहां पश्चिम के भौतिकवाद से वहां का विकासशील प्रगतिवाद सामंजस्य रखता है, भारतीय विकासवाद कुछ हद तक इनको पूर्णतः अपनाए है, पर अन्य संदर्भों में भारतीय लोकायत का आधुनिक स्वरुप है।

संविधान के मानववाद और विकासवाद उसकी समाजवादी दिशा में गढ़े हुए हैं। हालांकि समाजवाद को संविधान में तब लाया गया जब भारत सरकार ने उससे पहले ही 14 देशी बैंकों को बिना उचित मुआवज़ा दिए राष्ट्रीयकृत कर दिया था, और नागरिकों के संपत्ति-अधिकार के इस उल्लंघन के साथ संविधान को एकरुप करने की जरुरत महसूस की गयी, उससे पहले ही संविधान की आदि परिकल्पना में ही समाजवादी रुख मौजूद था। जहां तक संपत्ति के अधिकार के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण का संदर्भ है, यह दृष्टिकोण जमींदारी का अंत करने के सरकार के अभियान में तो था ही, पर संपत्ति विरोधी विचार मात्र को समाजवाद समझना उचित नहीं होगा। समाज उद्धार के विभिन्न रुप होते हैं और राजनीति में इसके प्रति सक्रिय रुख को प्राथमिकता देना, समाजवाद का विस्तृत स्वरुप है, और वैचारिक प्रयोग में समाज उद्धार की परिकल्पनाओं की प्राथमिकता भारतीय विचारों का बर्त्तानवी सरकार के सम्मुख इन विचारों का प्रथम और प्रधान रुख था। समाज सुधार का मिशन भारत के

पाश्चात्यीकरण का अभिन्न अंग है। पश्चिम के आधुनिकतावाद और उसके ईसाई धर्म के सम्मुख, उनकी आंखों में ऊपर उठने के प्रयासों में आज जैसे तब, भारतीय विचार शैली का प्रधान रुख रहा है।

भारत में, जैसे पश्चिम में भी, समाजवाद के विभिन्न स्वरुप हैं। भारत में जैसे पश्चिम में भी इन अभिव्यक्तियों में मेल भी है, और द्वंद्व भी। राजनीतिक क्षेत्रों में द्वंद्व ही प्रधान है, जब कि अपने में समाजवाद आधुनिक समाज की एक विस्तृत धारा है, जिसकी विभिन्न समाजों में उन समाजों के अनुकूल ही अभिव्यक्ति होती है। जहां समाजवाद की उपज पश्चिम में ही है, भारतीय और पश्चिम के समाजवाद एकरुप नहीं। भारत की विचारधाराओं में वामपंथ का विशेष दबदबा है, विशेषकर के चिंतन से जुड़े कार्यकलापों में। कानूनीतौर पर और आम माहौल में भी, व्यक्ति और संपत्ति की समाज और शासन व्यवस्था की ज्यादतियों से रक्षा के साधन अति सीमित हैं। वामपंथ से जुड़े क्रांतिकारी विचारों का बुद्धिजीवियों पर गहरा प्रभाव है, और क्रांति के सिद्धांत के विभिन्न रुपों का बहुत ही सम्मानित स्थान है, पर इन विचारों पर विभिन्न पक्षों का आपस में चर्चा और बहस का घोर अभाव है। जहां पश्चिम में समाजवाद और समाजवादी परिकल्पनाओं से जुड़े उसूलों और सिद्धांतों पर विस्तृत चर्चा और बहस है, भारत की समाजवादी धारा की उपलब्धियां मात्र व्यवहार तक सीमित हैं। समाजवाद पर विवेचना भारत में प्रायः है ही नहीं और समाजवाद से जुड़ी चुनौतियों पर कोई चिंतन ही नहीं होता। यूनिवर्सिटियों में भी, जहां वामपंथी दबदबा विशेष है, इस वामपंथ का स्वरुप एक्टिविज़्म (Activism) से जुड़ा है, न कि बहस और चर्चा से। भारत में इस प्रकार वामपंथ के हावी होने की जड़ें स्वतंत्रता संग्राम से चली आ रही हैं, जहां वामपंथ और उसका एक्टिविस्ट स्वरुप दोनों ही उत्पन्न हुए। कहा जा सकता है कि जहां वामपंथ का चिंतन पर गहरा और व्यापक प्रभाव है, इसका मात्र चिंतन में अभिव्यक्ति अचर्चित उसूलों पर सहमति और वामपंथ का अपना और अपनों की सुरक्षा पर आधारित है।

जैसे वामपंथ वैसे ही दक्षिणपंथी विचारों की भी कोई विस्तृत विवेचना नहीं और विचारों के इस मौन में ही, व्यावहारिक ऐक्टिविस्टों की होड़ भारतीय राजनीति का स्वरुप है, और सच कहा जाए तो भारतीय

संविधान की उपज और स्वरुप भी कुछ इसी प्रकार के हैं। जैसे विज्ञान में, वैसे राजनीति में भी उसूली चिंतन पश्चिम में किया जाता है जबकि व्यवहार में उसूली चिंतन का कार्यान्वयन और उसमें उसूलों का परिवर्तन, जिसका अक्सर उसूली चिंतन से कहीं भिन्न स्वरुप प्रस्तुत हो जाता है, भारतीय पक्ष का योगदान हुआ करता है।

कुछ ही बुद्धिजीवियों के लिए ही वामपंथ और दक्षिणपंथ, मेटाफिजिक्स और अध्यात्म के सवाल का रुप लेती हैं। तत्त्वबोध की चर्चा का स्वरुप इन से कहीं और ही हुआ करता है, पर विचारधाराओं की शैली जो आधुनिक भारत के पाश्चात्यीकृत विचारों की अभिव्यक्ति है, इन्हीं वामपंथियों और दक्षिणपंथियों में पायी जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि भारत का आधुनिकतावाद मात्र एक खेल तक सीमित है, जहां कि असली और गंभीर प्रश्नों की विवेचना इससे परे कहीं और ही वास करती है।

पाश्चात्यीकृत विचारधारा का यह खोखलापन भारतीय समाज में व्यापक अव्यवस्था और अराजकता से जुड़ा है। जहां पाश्चात्य परस्त पश्चिम के श्रेष्ठतम विचारों की शैली तक नहीं उठ पाते, आम जनता में पश्चिम में निचले दर्जों की विचार और व्यवहार शैली लोकप्रिय होती जा रही है। जीवन-यापन की कार्यशैली के पाश्चात्यीकरण के साथ-साथ वैचारिक स्तर पर एक शून्यता-सा का सृजन हो रहा है, जिसमें दैनन्दिनी जीवन और गंभीर चिंतन के तारतम्य का विनाश-सा हो रहा है। त्रिशंकू की तरह, लोकों के बीच लटके, पाश्चात्यीकृत भारतीय समाज के व्यवहार और विचार न तो गंभीरता अपना सकते हैं और न ही उसको पूर्णतः नकार सकते। गंभीरता को वे निजी मामलों के कारागार में बंद किए हुए हैं, जो विस्फोटक शक्ति से दंगे-फसादों में उभर कर आते हैं, और कभी यहां क्रांति तो कभी वहां साम्प्रदायिकता में अपने विकराल, विनाशकारी रुप में प्रस्तुत होते हैं।

पाश्चात्यीकृत समाज में अध्यात्म और मेटाफिज़िक्स के प्रति नकारात्मक रुख, बीसवीं शताब्दी के पश्चिम के फिलॉसफी के प्रधान रुख के अनुकूल, व्यापक नहीं, तो एक महत्त्वपूर्ण स्थान अवश्य पाता है, पर बहुतायत एक द्वंद्व में ही विचरण करते हैं, जो संदर्भ पर आधारित उनके दृष्टिकोण का निर्धारण करता है। जहां वे एक ओर और एक संदर्भ में अनीश्वरवादी

विचार और मेटाफिज़िक्स तथा अध्यात्म की आलोचना अपनाएं हैं, वहां दूसरी तरफ, दूसरे संदर्भ में ईश्वर, अध्यात्म और मेटाफिज़िकल ख्यालों में आस्था रखते हैं। सच पूछिए तो स्वयं पश्चिम का भी यही हाल है, जो न कि मेटाफिज़िक्स को पूर्णतः अपना सकता है और न ही उसका पूर्णतः खंडन और त्याग कर पाता है, पर जहां पश्चिम के गंभीर चिंतकों की कृतियों में और इस मुद्दे से जुड़े प्रश्नों पर, द्वंद्व-ग्रसित ही सही, पर विवेचना का अभाव नहीं है, भारत में यह परिस्थिति पाश्चात्यीकृत लेखकों की कृतियों में अभिव्यक्ति नहीं पा पाती है। तब भी चर्चा और वाद-विवाद में यह भारत के पाश्चात्यीकृत चिंतकों के ख्यालों का एक महत्त्वपूर्ण अंश तो है ही।

पाश्चात्यीकृत समाज के बहुतायत आस्तिक और आस्थावान ही हुआ करते हैं, जिनका अध्यात्म और मेटाफिज़िक्स भले ही परंपरागत नहीं, परंपराओं के किन्ही आधुनिक स्वरुप या अभिव्यक्ति का पक्ष-पोषण करतीं हैं, पर ये अपने आप को समाज के अल्प-शिक्षितों के बहुतायत, जो कि आस्थावान और आस्तिक हुआ करते हैं, से अलग ही रखते हैं। मिथक और अंध-विश्वास का खंडन पूर्ण रुप से नहीं ही सही, आंशिक रुप से पाश्चात्यीकृत समाज का अभिन्न अंग है।

अति–पाश्चात्यीकृत दो प्रकार में बंट जाते हैं। एक पूर्णतः अपने आप को पश्चिम की परंपरा, उसकी संस्कृति, चिंतन और कलाओं से जोड़ना चाहते हैं, न केवल विशेष मुद्दों पर उसकी नकल और दूसरी या तो पश्चिम को सम्मान देता या उसकी पूर्णतः खण्डन करता, वापस अमिश्रित भारतीय परंपराओं का ही पक्ष-पोषण करता है।

यूनिवर्सिटियों में अमिश्रित भारतीय परंपराओं का शिक्षण और अध्ययन जहां इन परंपराओं के अमिश्रित स्वरुप को बल देता है, वहां परंपराओं के आधुनिक परिवर्तनों की अभिव्यक्तियों से अलग ही रहता है। देश के बहुमत और बहुसंख्यक की चिंता प्रणाली इन्ही आधुनिक परिवर्तनों की अभिव्यक्तियों में आस्था और विश्वास रखता है, और सच पूछिए तो कई शिक्षित भी, पर यूनिवर्सिटियों में इन ख्यालों को निजी मामलों की खोली में रखकर अदृष्ट-सा बना दिया जाता है।

यूनिवर्सिटियों के कारोबार आम जनता के व्यवहार से कुछ अलग ही हुआ करते हैं। पश्चिम में भी यूनिवर्सिटियों और आम समाज के चिंतकों में भेद है, पर पश्चिम में आम जीवन में मुद्दे जब पनपते हैं, शीघ्र ही वे यूनिवर्सिटी में भी स्थान पा जाते हैं। भारत में तो यूनिवर्सिटी के चिंतन और आम समाज के रुचियों के बीच एक गहरी खाई सी है। विशाल बहुतायत की आस्थावान और आस्तिक स्वरुप का यूनिवर्सिटी के चिंतन में जैसे कोई स्थान ही नहीं, और जैसे यूनिवर्सिटी अपने आप को अध्यात्म और मेटाफिज़िक्स से अलग रखने में रत है, समाज में आध्यात्मिक और मेटाफिज़िकल विचारों को जैसे पश्चिम का आधुनिकतावाद छूता ही नहीं। एक दूसरे से परे, और अपने आप में ही संतुष्ट, आधुनिकतावाद और परंपरागत विचार अपनी ही दिशा में बिना हिचकिचाए बहे जा रहे हैं, और जहां अध्यात्म और मेटाफिज़िक्स व्यक्तियों के प्रेरक हैं, वहीं यूनिवर्सिटी मात्र एक कारोबार के साधन में परिवर्तित हो रही है।

अध्यात्म और मेटाफिज़िक्स दर्शन के जीवंत स्रोत हैं, जिनका सीधा ताल्लुक दैनन्दिनी व्यवहार से हैं। नास्तिक हो या आस्तिक, पाश्चात्य परस्त या परंपरा का दकियानूसी पक्षधर, भोग विलास का प्रतिपादक या अनुशासन और कर्त्तव्य का अनुयायी जीवन और उसके सुख-दुःख पर चिंतन और उसको ब्रह्मांड के प्रश्नों से जोड़े बिना, मनुष्य जीवन अपनी सार्थकता या निरर्थकता का संबोधन कतई नहीं कर सकता। सांसारिक जीवन की गहराई का संबोधन किए बिना मनुष्य अपने अस्तित्व के बोध का सृजन नहीं कर सकता। स्वतंत्रता संग्राम के बाद इन सब पर चर्चा के माहौल का लोप सा होने को चला है, जो आए दिन एक शून्य मौन में परिवर्तित हो रहा है। आवश्यक है कि हम अपनी आध्यात्मिक और मेटाफिज़िकल परिस्थिति पर चिंतन मनन करें और जिस जटिल मोड़ पर खड़े हैं उस पर वाद-विवाद का सिलसिला पुनः आरंभ करें।

आभार

मैं, इस प्रस्तुति के लिए नेहरु स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय के प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूँ। साथ ही, इस प्रस्तुति को पुस्तकाकार में लाने के लिए अपने सहयोगियों का भी आभारी हूँ।

सामयिक प्रकाशन, नेहरु स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय